कवि विक्रम रचित

'सुदामा चरित

सं॰ - डॉ॰ गंगा प्रसाद गुप्त 'बरसैंया'

कवि विक्रम रचित

सुदामा चरित

संपादक

डॉ० गंगाप्रसाद गुप्त 'बरसैंया'
प्रोफेसर एवं अध्यक्ष हिन्दी विभाग
महाराजा महाविद्यालय, छतरपुर (म० प्र०)

प्रमुख संपादक

डॉ० कान्ति कुमार जैन
प्रोफेसर, मक्खन लाल चतुर्वेदी पीठ
अध्यक्ष, बुंदेली पीठ
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
डॉ० हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय सागर, (म० प्र०)

सत्येन्द्र प्रकाशन
३०, पुराना अल्लापुर, इलाहाबाद- २११००६

प्रकाशक :
सत्येन्द्र प्रकाशन
३०, पुराना अल्लापुर,
इलाहाबाद–२११००६

मुद्रक :
स्टैण्डर्ड प्रेस
२, बाई का बाग,
इलाहाबाद—२११००३

आवरण मुद्रक :
दत्ता ब्लोक मेकर्स एण्ड प्रिंटर्स
२१८, गांधी नगर,
इलाहाबाद—२११००३

जिल्दबन्दी :
विश्वनाथ बुक बाईंडिंग हाउस
५, तालाब नवल राय,
नया बैरहना, इलाहाबाद–२११००३

प्रथम संस्करण : १८८६ ई०
संस्करण : ५०० प्रतियां
मूल्य : पंद्रह रुपये मात्र

श्रीगणेशाय नमः ॥ अथ [illegible] लिख्यते ॥ दोहा ॥ उमारं
मनरुस्तुतिसदारतकैरैतपसान ॥ रंभादिकलमहेसंकेगननायक
करकाज ॥ छप्पय ॥ तुंम्रनकरविधिबेदचारमुषअमउचारत ॥
तुंम्रनकरधरचक्र विमहांनवसिंधारत ॥ तुम्रनकरत्रिपुरा
रिकालकुटकविषधारे ॥ तुंम्रनकरसुरराजअसुरवृतासुरमारे
सकलसिरसुंभरतसरुंकैरतमनोरथ बुधसदंन ॥ हरलीला
बिक्रमकहंतदेहुसुमतकरबरबदंन ॥ कुंडल्या ॥ संवतसोरा
सैसहसचौसटवर्षविचार ॥ मासदमोदरचवोदशी सुकल

विक्रम कविकृत 'सुदामा चरित'

एक दुर्लभ और ऐतिहासिक पाण्डुलिपि

सुदामा कृष्ण के चटसार सखा थे। कृष्ण और सुदामा का आख्यान हिन्दी के कृष्ण भक्त कवियों के बीच अत्यन्त प्रिय रहा है। सभी कवियों ने अपने-अपने काव्य-सामर्थ्य के अनुसार सुदामा और कृष्ण के संबंधों को परिभाषित किया है और भारतीय जन-जीवन में व्याप्त मूल्यों की व्याख्या की है। इस प्रकार के सुदामा विषयक आख्यानों में कविवर नरोत्तम दास कृत 'सुदामा चरित' सबसे प्राचीन, मार्मिक एवं लोकप्रिय माना जाता है। किन्तु हिन्दी के प्रसिद्ध समीक्षक एवं अनुसंधानकर्ता डा० गंगाप्रसाद गुप्त 'बरसैंया' ने विक्रम कवि कृत 'सुदामा-चरित' की एक दुर्लभ पाण्डुलिपि का संधान कर उसका ऐतिहासिक परीक्षण किया है और निर्भ्रान्त तथ्यों एवं पुष्ट तर्कों के आधार पर उसे हिन्दी का प्राचीनतम सुदामा चरित माना है।

विक्रम ने अपने काव्य में नवीन उद्‌भावनाएं भी की हैं जिनकी ओर डा० बरसैंया की दृष्टि गयी है। कृष्ण और सुदामा पत्नी सुशीला के सम्बन्धों की ओर विद्वान् शोधकर्ता ने जो हल्का सा संकेत किया है, वह विक्रम को आधुनिक मनोविज्ञान और मूल्य-बोध के बहुत नजदीक ले आता है। यही नहीं, डा० बरसैंया ने 'सुदामा चरित' के पाठ निर्धारण में भी अपनी रुचि प्रदर्शित की है और विक्रम कवि के समग्र और समाज को उनकी प्रस्तुत कृति के आलोक में समझना, परखना चाहा है।

विक्रम कवि की प्रस्तुत कृति अभी तक विद्वानों एवं अध्येताओं के निकट सर्वथा अज्ञात थी। मैं डा० वरसैंया को इस दुर्लभ एवं ऐतिहासिक महत्त्व के काव्य के संपादन के लिये बधाई देता हूँ। मुझे विश्वास है कि हिन्दी के इतिहासकार एवं शोधकर्ता विक्रम कवि और उनके 'सुदामा चरित' का समुचित मूल्यांकन करेंगे।

३१.३.८६
सागर

प्रमुख संपादक

आमुख

बुन्देलखंड में मुझे जो अनेक अज्ञात और अप्रकाशित कृति तथा कृतिकार मिले उनमें कवि विक्रम कई दृष्टियो से महत्वपूर्ण हैं। उनका एक मात्र ग्रन्थ 'सुदामा-चरित' प्राप्त हुआ है जिसका कहीं भी किसी भी इतिहास अथवा आलोचना-ग्रंथ में नामोल्लेख भी नहीं है। सुदामा चरित सम्बन्धी शोध प्रबन्ध की सूची में भी इसका नाम नहीं है। स्पष्ट है कि यह कृति हिन्दी-जगत के लिए सर्वथा नवीन है। २०८ छन्दों की इस कृति में प्रारम्भ में देवताओं की वन्दना और वंश परिचय है। इसके बाद सुदामा की पत्नी की व्यथा, आग्रह, पाप-कर्म और उनके परिणाम, कृष्ण की महत्ता, गुण-दोष, अनेक पौराणिक-प्रसंग, भिक्षावृत्ति की निन्दा, गरीबी की भयावहता, कृष्ण की उदारता, सुदामा-गमन, द्वारिका-आगमन, कृष्ण द्वारा सुदामा का अकल्पित सत्कार, पुरी के वैभव एवं दरबार की सम्पन्नता का चित्रण, भेंट, विदाई, सुदामा का आक्रोश-निराशा तथा कृष्ण की बुराई, जीवन काधिक्कार, गाँव लौटना झोपड़ी देखकर आश्चर्यचकित होना, पत्नी पर अविश्वास और अंततः वास्तविकता का बोध पाकर पूर्ण संतोष तथा कृष्ण के प्रति कृतज्ञता आदि का वर्णन है। लेकिन अभी तक की परम्परा से हटकर विक्रम कवि ने अनेक नवीन योजनाओं का संयोजन अपनी कृति में किया है जिसका विश्लेषण हम आगे करेंगे।

कृति में दिये गये तथ्यों के अनुसार उनके पूर्वज चदेरी राज्य से जेरीन आये थे। जेरोन वर्तमान में म० प्र० के टीकमगढ़ जिले का एक गाँव है जो झाँसी से एकदम निकट है। कवि विक्रम प्रानसुख के पुत्र थे।

वंश-परिचय के साथ कवि ने अपने जन्म-समय का कोई उल्लेख नहीं किया। किसी अन्य स्रोत से भी उनके जन्म की जानकारी नहीं मिल सकी। हाँ, ग्रंथ में इसका रचनाकाल अवश्य दिया हुआ है। उससे कवि का जन्म-समय जानने में सुविधा तो होगी ही, हम सुदामाचारित काव्य परम्परा में भी इस कृति का स्थान निर्धारित कर सकते हैं। ग्रन्थ के अनुसार इसकी रचना संवत १६६४ में हुई थी—

संवत सोरा से सहस चौंसट वर्ष विचार। मास दामोदर त्रयोदसी सुकल पछ गुरुवार॥
सुकल पछ गुरुवार जाम इक प्रान प्रकासी। पट पद लग्न विचार हृदै हेरम्ब निवासी॥
कहें विक्रम कविराय सरद रित अति सुन्दर वर। कीनो कथा प्रसंग सुधा ताहै संवत सर॥

नरोत्तमदास के सुदामाचरित का रचनाकाल भी स्पष्ट नही है। शिवसिंह-सरोज के मात्र इस उल्लेख से कि वे संवत १६०२ में उपस्थित थे, उनके रचनाकाल

का अनुमान किया जाता है किन्तु वह भी प्रमाणिक नहीं है। यह निश्चय ही नहीं है कि उन्होंने सुदामाचरित की रचना कब की। डा० तिवारी का यह मत कि उन्होंने २० वर्ष की आयु में यह रचना की होगी, बिना किसी प्रमाण के युक्तिसंगत नहीं लगता। केवल शिवसिंह सरोज के इस उल्लेख को कि वे संवत १६०२ में थे, बिना किसी खोजबीन एवं तर्क-वितर्क के सभी विद्वानों ने प्रस्तुत भर कर दिया है। इस कृति की भाषा-शैली इनके रचनाकाल को संदिग्ध बनाती है। इस युग की कृतियों मे रचनाकाल और वंश-परिचय प्रायः दिया जाता था किन्तु इस कृति में यह सब नहीं है। दूसरे, शिवसिंह सरोज में जो संवत दिया गया है वह नरोत्तमदास के जीवित रहने का है, सुदामाचरित के रचना का नहीं। सं० १६०२ में उनकी आयु बहुत कम रही हो और इस कृति की रचना जीवन के अंतिम दिनों में हुई हो जो सं० १६६४ के बाद भी सम्भव है।

गम्भीरता से विचार करें तो विक्रम का यह सुदामाचरित हिन्दी का प्रथम सुदामाचरित सिद्ध होता है। यह तो निर्विवाद ही है कि विक्रम कवि की यह रचना इस परम्परा के प्राचीनतम ग्रन्थों में प्रतिष्ठित है रचनाकाल ही नहीं, काव्य-गत वैशिष्ट्य और मार्मिकता की दृष्टि से विक्रम कवि की यह कृति बहुत महत्वपूर्ण है। उन्होंने श्रीमद्भागवत से उद्भूत परम्परा का ही निर्वाह नहीं किया, अपितु मानव-मन के सहज उद्गारों एवं मौलिक उद्भावनाओं से इसे नवीनता और सरस विश्वसनीयता भी प्रदान की है। यहाँ हम संक्षेप में उनकी उद्भावनाओ को संक्षेप में रेखांकिअ करेंगे—

(१) **सुदामा एवं पत्नी का वार्तालाप तथा विदा की योजना**—कथा के प्रारम्भ में सुदामा और उनकी पत्नी के वार्तालाप के माध्यम से सुदामा की दरिद्रता, अनेक पौराणिक प्रसङ्गों की चर्चा के बाद द्वारिका-प्रस्थान का वर्णन किया गया है। इस प्रसङ्ग का नरोत्तमदास और हलधर को छोड़कर सभी में अभाव है। हाँ, विक्रम में न तो हलधर की तरह लम्बा और उबाऊ है और न नरोत्तम की तरह संक्षिप्त। कवि ने यहीं पर अवसर निकालकर लोकजातियों और लोकजीवन का भी चित्रण किया है। एक बात यह भी है कि अन्य सभी कृतियों में सुदामा तंदुल लेकर घर से चले जाते हैं किन्तु विक्रम ने अपनी कृति में पत्नी द्वारा बिदा देने का चित्रण कर उसे अधिक स्वाभाविकता प्रदान की है। विदा के समय ब्राह्मणी की हालत देखिये—

पतिव्रता को धर्म यह पति बिन धरत ना धीर।
चलत सुदामा द्वारिका जल भरि आये नीर।

(२) यात्रा-वर्णन—विक्रम के अतिरिक्त किसी अन्य कवि ने उनकी यात्रा का वर्णन नहीं किया। विक्रम ने १० छंदों में सुदामा की यात्रा का स्वाभाविक चित्रण किया है। एक ब्राह्मण का रास्ते में मिलना, 'डाबरी' का भोजन, सुदामा की मन: स्थिति, व्याकुलता आदि को भी प्रस्तुत किया गया है जो सर्वथा नवीन कल्पनायें हैं—

पीछे मुरकत दूर धरि आगे भारी पंथ।
भयो विप्र नट को बटा थिर न रहत ए कंत।

(३) शिव-पार्वती-प्रसंग—यात्रा-वर्णन के पश्चात् विक्रम ने सुदामा को गोमती के किनारे उपस्थित बताया है। वहीं स्थित शिव-पार्वती मन्दिर में सुदामा उनकी वन्दना करते है। यहीं पर शिव-पार्वती के रूप, गुण, ऐश्वर्य आदि का ४ छंदों में वर्णन किया है। यहीं पर पार्वती सुदामा को वरदान भी प्रदान करती हैं—

हौं द्रज दीन अनाथ मैं तन मन गयौ अति हार।
कै जननी करिवौ भलौ कै दुष दीजौ टार।
सुन द्रज बानी कहत भुमानी रक्षा करिहौं सब दुष हरिहौं।

(४) द्वारिका-वैभव वर्णन—पार्वती से वरदान प्राप्त करने के बाद द्वारिका में प्रवेश करते हैं। कवि ने सीधे सुदामा को कृष्ण के दरबार में न भेजकर द्वारिका-नगरी का दर्शन कराया है। अन्य कवियों ने तो सीधे दरबार में प्रवेश करवा दिया है। सुदामा द्वारिका नगरी का वैभव बाजार, भवन, मन्दिर, नागरिक, जीवन-व्यवस्था आदि देखकर आश्चर्यचकित हैं—सब प्रकार की सम्पन्नता है—

कंचन भाल मही पुनि कंचन द्वार बंधे नगजात विसेषे।
वंधन वीच वितान तने प्रति ठौरन ठौर कल्पद्रुम पेषे।
चार बजार गज पुनि विक्रम जादव भीर भयंकर लेषे।
ब्राह्मण चकित हुवै चितवे वृजराज पुरी यह कोतिक देषे।

(५) कृष्ण-दरबार का वर्णन— अन्य कवियों ने दरवाजे पर पहुँचते ही कृष्ण का दौड़कर मिलना चित्रित किया है किन्तु विक्रम कवि ने दरबार का दृश्य उपस्थित कर सुदामा के मनोभावों को प्रस्तुत किया है। यह अधिक स्वाभाविक भी प्रतीत होता है—

जदिकुल दरवारी श्रुत हितकारी क्रिस्नमुरारी निकट रहै।
अवनी नृप भारी आयुधधारी अरदलरारी अगिम रहै।
विधि वेद उचारत अगम विचारत चमर ढुरावत इन्द्र हिअै।
नारद गुन गावत वीन वजावत सुजस सुनावत हर्ष हिअै।

(६) **सुदामा-कृष्ण-मिलन प्रसंग में भी नवीनता** :—प्राय: अन्य सुदामा-चरितकारों ने इस प्रसंग को भक्तिभाव से बोझिल बनाकर कृष्ण की रूपमाधुरी और मिलन की हड़बड़ी का ही अधिक चित्रण किया है। किन्तु विक्रम कवि ने कृष्ण के औदार्य और स्वाभाविकता के लिये जहाँ कृष्ण की व्याकुलता का चित्रण किया है वहीं सुदामा की मन:स्थिति का भी ध्यान रखा है। सुदामा को देखकर कृष्ण की व्याकुलता देखिये—

देख सुदामा दीन व्रज उठे क्रस्न भहराइ।
देह रही तकिया निकट सुरत मिली अकुलाइ।

सुदामा को आशंका थी कि शायद कृष्ण उनसे न मिलें। अत: जब वे कृष्ण को अपनी ओर आते देखते हैं तो समझते हैं कि किसी और से मिलने जा रहे हैं -इसीलिये वे धीरे-धीरे पीछे हटते जाते हैं—

ज्यों ज्यों आवत हरि निकट त्यौं द्रज भागत दूर।
मिलन जात प्रभु और को कोऊ मुनि आवत भूर।

(७) **विप्र-महिमा वर्णन**—भारतीय वर्ण-व्यवस्था में ब्राह्मणों का स्थान सर्वोपरि है। तभी तो तुलसीदास ने यहाँ तक लिख दिया कि—

पूजिय विप्र जदपि कुल होना।
सूद्र न गुन गन ग्यान प्रवीना।

विक्रम कवि भी वर्ण व्यवस्था के समर्थक हैं। इसीलिये कृष्ण से मिलन के बाद उन्होंने विप्र की महत्ता के सम्बन्ध में चार सवैयों को संयोजित किया है। इसमें भृगु, अगस्त्य, गौतम, विश्वामित्र आदि ब्राह्मणों की पौराणिक कथा का भी प्रसंग दिया गया है। वे मानते हैं कि विप्र-विरोधी की गति अच्छी नहीं होती—

विप्र की लात सही मस गात सों पहिर लहं उर में करि गहनों।
विप्र ही सोक समुद्र लयो व्रज छत्र विहीन करी कर छानो।
विप्र ही काज श्री हरिचन्द्र विके धरनी चलियो जसु वानो।
विक्रम विप्र विरोध तजे नर ते सठ अंग दुरंग न जानो।

विप्र-महिमा के वर्णन अन्य सुदामाचरितों में नहीं मिलते।

(८) **तन्दुल भेंट और सम्पत्ति-दान के समय रुक्मिणी का चातुर्य**—दरिद्रता की हीनता से व्यथित और संकुचित सुदामा की काँख से चावल के छीने जाने का वर्णन प्राय: सभी कवियों ने किया है किन्तु विक्रम के कृष्ण छीनने की बजाय सुदामा से अपना यह विश्वास व्यक्त करते हैं कि उनकी भाभी ने उनके लिये अवश्य कुछ न कुछ भेजा होगा और तब सुदामा कृष्ण की प्रभुता, उदारता तथा

स्नेह का प्रकाश करते हुये काँख से निकालकर पोटली दे देते हैं—'छोर दये पट ते व्रज तन्दुल बाँह पसार लिये जदुराई।' इसमें अधिक सहजता और स्वाभाविकता प्रतीत होती है। इसी प्रकार दो मुट्ठी चावल खाने के बाद दूसरे सुदामा चरितों में रुक्मिणी झपटकर हाथ ही नहीं पकड़ती बल्कि यहाँ तक कहती है कि सब कुछ दे दोगे तो अपने पास क्या बचेगा। विक्रम ने इसे अधिक मर्यादित और स्वाभाविक रूप दिया है। वहाँ रुक्मिणी कृष्ण को यह कहकर रोकती है कि कच्चे चावल ज्यादा खाने से आपका पेट खराब हो जावेगा।

(६) **विदा एवं सुदामा की मन:स्थिति का मार्मिक प्रस्तुतीकरण** :—काव्य-रचना की महत्ता में मार्मिक प्रसंगों का स्थान श्रेष्ठ है। अन्य लेखकों की अपेक्षा विक्रम के इस विदा-प्रसंग में अधिक मार्मिकता और प्रभावशालिता है। उसका कारण उसमें नवीन कल्पना है। विक्रम के सुदामा १२ दिनों तक कृष्ण के पास रहने के बाद विदा माँगते हैं जबकि हलधर और वंशमणि के सुदामा दूसरे दिन तथा नरोत्तमदास के सुदामा सात दिन बाद विदा माँगते हैं। विक्रम ने इस तथा इस तरह के अन्य प्रसंगों को मानवीय भूमिका प्रदान कर उसकी सहजता की रक्षा की है। जब सुदामा कृष्ण से विदा माँगते हैं तो वह उनसे पुन: पत्नी सहित आने का वचन लेते हैं। यह तो आत्मीय सहज औपचारिकता भी है। इसका ख्याल अन्य कवि नहीं रख सके।

इसी प्रकार जब कृष्ण सुदामा को विदा कर रहे हैं तब सुदामा को लगता है कि अब कृष्ण जी उसे कुछ निकालकर देने ही वाले हैं। वे ललचाई दृष्टि से कृष्ण की ओर देखते हैं—

'यह जग आसा प्रबल है द्रज चितवत हरि ओर।
अब प्रभु मोंहि कछु देत हैं पाग षुटी थे छोर।

किन्तु प्रत्यक्ष रूप से कुछ न पाकर सुदामा को बड़ी निराशा तथा क्षोभ होता है क्योंकि वह कृष्ण के पास केवल सम्मान कराने और स्नेह पाने के लिये नहीं आये थे। उन्हें तो दरिद्रता से मुक्ति चाहिये और वह कुछ धन पाने से ही संभव है। कृष्ण ने कोई धन सुदामा के हाथों में नहीं दिया। हलधर आदि के सुदामा तो प्रभु के नाम पर सम्मान से ही संतोष कर लेते हैं किन्तु विक्रम ने सुदामा को साधारण ब्राह्मण के भाव से प्रस्तुत कर उनके भीतर के सारे आक्रोश को व्यक्त कराया है जो बहुत स्वाभाविक लगता है। सुदामा कहते हैं कि वे तो कृष्ण को बचपन से ही जानते हैं। नीच कुल का व्यक्ति ऊँचे लक्षण कैसे सीख सकता है—

'नीच को दूध पियो इन गोकुल, ऊँच के लक्षिन कौन सिखावै।'

उन्हें अपने भूले बच्चों की याद आती है जो बड़ी ललक से अपने पिता की राह देख रहे होंगे। खाली हाथ जाकर वे क्या मुँह दिखायेंगे। इतने दिन भीख भी नहीं माँग सके। उन्हें अपने पर इसलिये क्रोध आता है कि जहाँ वे ठहराये गये थे वहाँ सारी चीजें सोने की थीं। वे चाहते तो उनमें से थोड़ा सा उठा लेते। उन्हें अपना दुपट्टा छूटने का भी दुख है—

'एक दियो कटि को पटका विसरे उतही मति मंद हमारी।'

उनका दुख कृत्रिम नहीं है। उनकी विवशता ही उन्हें इस स्थिति में डालती है। क्या-क्या सोचा था—

आये ते आसा लगी इनकी सो निरास चले पग पंथ न पैहै।
पेट भरे धक है हमको सुत भूष मरे अब को दुष सैहै।
बालक दौर मिलै अकला लषि विक्रम को तन धीरज दैहै।
एक टका नहि गांठ दियो घर जात त्रिया घरनी कह कैहै।
जहाँ परिजंक बिछै हमषों तंह हीरन हार लगे अति भारी।
दवं अपार करी कमसार धरे मुकताहल कंचन झारी।
भूषन एक न चोर लियो डरपे मन विक्रम नीति विचारी।
एक दियो कटि को पटुका बिसरे उतही मति मंद हमारी।

सुदामा कभी अपने को कोसते हैं, कभी पत्नी को। कभी भाग्य को और कभी कर्मदोष को। जैसे-जैसे गाँव पास आता है, उनकी व्याकुलता बढ़ती ही जाती है। ऐसे जा रहे हैं जैसे कोई चोर जा रहा हो। यहाँ तक कि पत्नी और बच्चों की हालत की कल्पना कर वे बेहोश हो जाते हैं—

ध्रक जावत जात जमात ना पात रमे पर द्वार पटके धन छीना।
घर जात हो त्यों चोर मत नार हेसत वाट।
पिय ल्याय है कछु गांठि यह सुस्त आयो स्वेद, तब भूमि गिरो अचेत।

इस प्रकार सुदामा की स्थिति का जितना विस्तृत और स्वाभाविक चित्रण विक्रम कवि ने किया है वैसा हमें और किसी अन्य सुदामा चरित में नहीं मिलता। यहाँ देवत्व को परित्याग कर विशुद्ध मानवीय भूमिका का निर्वाह किया गया है।

(१०) **सुदामा का आक्रोश**—घर लौटने पर झोपड़ी की जगह जब वैभव सम्पन्न भवन देखा तो सुदामा को लगा कि किसी कामुक नरेश ने उसके घर और घरनी को हथिया लिया है। अतः वे कहते हैं कि मैं कृष्ण को बुलाकर उसे ध्वस्त

कर दूंगा। जिस कृष्ण की भर्त्सना कर रहे थे उसी के प्रति अटूट विश्वास। फिर भी यदि कृष्ण न आये तो मैं आत्मघात कर लूंगा और भूत बनकर शत्रु का नाश करूंगा। गया करने के बाद भी उसे नहीं छोड़ूंगा नहीं—

हर प्रकार न लगै तौ आत्मघात हौं करौं।
दरवाजे मूरत लिखै ग्या भरावै पिंड।
तऊ न पिक्षौ क्षाँरिहौं करौं सत्र तन खंड।

(११) चरित्र पर आशंका—अपने गाँव में बने महल और उसकी सम्पन्नता तथा पत्नी का शृंगार देखकर सुदामा के मन में अनेक आशंकायें तो होती ही हैं, वे पत्नी के चरित्र पर भी शक करते हैं। इससे भी आगे वे कृष्ण के प्रति भी आशंका करते हैं। उन्हें लगता है कि जिस कृष्ण ने मुझे कुछ नहीं दिया उसने आखिर उनकी पत्नी को यह सब क्यों दिया—

मोंहि दिये बहराय तोंहि रीझ सर्वस दियौ।
वाभी पूजन जाय घरै न पूजै फनपती।

इसके पहिले वे यह भी सोचते हैं कि किसी ने जबरन कब्जा कर लिया होगा—

लूटि लई टटिया मड़ई बछिया न बची अस नीति नसाई।

वह सब हमें दूसरे सुदामा चरितों में नहीं मिलता।

(१२) सुदामा के दरबार का वर्णन—सभी सुदामा चरितकारों ने सुदामा को अपने नये महल में पहुँचाकर ग्रंथ का अंत कर दिया है किन्तु विक्रम ने अपने सुदामा के सुखी जीवन की एक झलक भी प्रस्तुत की है। वे उसी प्रकार से दरबार लगाते हैं जैसे उस युग में राजा लोग या जागीरदार लोग लगाते थे। वही सारी व्यवस्थायें हमें वहाँ भी देखने को मिलती हैं। सुदामा के दरबार में 'गिलम गलीचों पर देस देस के देसपति' विराजे हैं। सुदामा गंगाजल से स्नान कर जरी के कपड़े पहनते हैं। तकिया के सहारे बैठे सुदामा के सामने किन्नरियाँ नृत्य कर रही हैं, सोने की छड़ी लेकर द्वारपाल खड़ा हुआ है जो दूसरों को मिलता है—

मुजरा आवत जात है पुरजन गुरजन सचिव सब।
कंचन लकुटी हात नृपति मिलावत पोरिया।

भूख-भूख चिल्लाने वाले बच्चे षट्रस भोजन कर रहे हैं—

माँगत षात हते दुर्दिन वांस वचे घर अन्न न ताके।
भूष ही भूष रटै सब बालक को दुष वरन सके बनता के।
छीन सरीर नहीं न दुकूल सुपाहि फटेधन ही बनता के।
तिहि सिर छत्र अनेक ढुरैं पिया कोहु ना व्यास पार करता के।

इस प्रकार स्पष्ट है कि विक्रम का यह सुदामा चरित रचना-काल की दृष्टि से तो हिन्दी का प्राचीन ग्रंथ है ही जो अभी तक अज्ञात और अप्रकाशित है, उससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि नवीनता और मार्मिकता की दृष्टि से भी यह अद्वितीय है। उक्त ग्रंथ का मूल पहली बार यहाँ पर प्रकाशित किया जा रहा है।

डॉ० गंगा प्रसाद गुप्त 'बरसैंया'

□